व्यक्तिपूजा और व्यवस्था के खतरे

डॉ. भगवतीलाल व्यास

व्यक्तिपूजा किसी न किसी रूप में विश्व के अनेक देशों में प्रचलित रही है। व्यक्तिपूजा का आधार भले ही व्यक्ति रहता हो पर पूजा उन गुणों की जाती है जिनके कारण वह व्यक्ति आम व्यक्तियों से अलग नजर आता है।

हम मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की पूजा करते हैं, लीला पुरुष कृष्ण को अपना आराध्य मानते हैं तो उनके गुणों के कारण। वैदिक काल में प्राकृतिक शक्तियों की पूजा की जाती थी तब भी उन शक्तियों का मानव जीवन के लिए उपयोगी होना प्रधान कारण था। कालांतर में मनुष्य की जीवन शैली में परिवर्तन आया। समाज व्यवस्थित रूप धारण करने लगा तब सामाजिक दृष्टि से वरेण्य महापुरुष पूजे जाने लगे। दरअसल तब पूजा व्यक्ति की न होकर व्यक्ति में निहित शक्ति या शक्तियों की होती थी। यह नितांत स्वाभाविक तथा मानवोचित लगता है।

किंतु जब हमारे जीवन में तर्क ने प्रवेश किया, प्रवेश ही नहीं किया बल्कि महत्वपूर्ण स्थान भी ग्रहण कर लिया तब अतिमानवीय तत्वों पर प्रश्नचिन्ह लगने लगे और कई देशों में व्यक्तिपूजा की परंपरा शिथिल पड़ने लगी। चूंकि हमारा देश धर्म प्रधान है, यहां बहुत सी बातों का नियमन तर्क नहीं, विश्वास करता है। जीवन की कई सरणियों को ज्ञान-विज्ञान नहीं, बल्कि आस्था और श्रद्धा तय करती है। बहुत से मार्गों का निर्धारण प्रयोजन के स्थान पर परंपराओं के हाथों होता है। यही वजह है कि बहुदेववाद यहां मजे

से फला फूला और आस्था के नाम पर 'भगवानों' की भीड़ लग गई। इसी आस्था-विश्वास ने अनंत काल से व्यक्तिपूजा का पोषण किया और व्यक्तिपूजा की आड़ में कई लोगों ने अपनी स्वार्थसिद्धि का कारोबार धड़ल्ले से चलाया।

मनुष्य के सद्गुणों की प्रशंसा हो, उसके प्रति हमारे मन में श्लाघाभाव बना रहे, आदर हो लेकिन इसका यह अर्थ तो नहीं कि उसे ईश्वर बना दिया जाए। जब-जब इंसान को ईश्वर बनाकर पूजा गया है या जब कोई इंसान स्वयंभू ईश्वर बन गया है तब-तब ईश्वर बौना हुआ है। यह विचित्र संयोग है कि जब-जब आदमी देवत्व के गुणों से गिरने लगता है, कुछ निहित स्वार्थी तत्व उसे जबरन देवत्व पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। वे जानते हैं कि उस व्यक्ति के द्वारा पूर्व में अर्जित यश उनकी मदद करेगा और वे वर्तमान की उसकी कमजोरियों को उसी यश की धवल चादर तले छुपा देंगे।

श्रद्धा अच्छी चीज है मगर अंधश्रद्धा बुरी है। हमारे यहां बहुत कम अंतर किया जाता है श्रद्धा, अश्रद्धा और अंधश्रद्धा में। सार्वजनिक जीवन के लोग—विशेषकर राजनीतिबाज इस तथ्य को अच्छी तरह जानते है इसलिए जब-जब उन्हें अपना स्वार्थसिद्ध करना होता है, वे किसी महापुरुष को ढाल बना लेते हैं। ऐसा करके वे उन अनेक अप्रत्याशित आक्रमणों से बच जाते है जो उन्हें अन्यथा झेलने पड़ते।

महात्मा गांधी, नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री और आसन्न भूत में इंदिरा गांधी तथा राजीव गांधी ऐसे नाम हैं जिनका फलदायी उपयोग करने से लोग कभी नहीं चूकते। बेशक इन लोगों का सामाजिक-राजनीतिक योगदान महत्वपूर्ण रहा और ये श्रद्धेय भी हो सकते है मगर इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम इनको साइनबोर्डों की तरह अपनी-अपनी दुकानों पर टांक लें और इनकी अर्जित श्रद्धा को भुनाते हुए अपना 'घटिया माल' लोगों को थमा-थमाकर 'मुनाफा' कमाते रहें। व्यक्तिपूजा का इससे घृणित रूप और कुछ हो ही नहीं सकता मगर अफसोस है कि हम इसे चलने दे रहे हैं। इस मुकाम पर आकर लगता है कि हमारी सांस्कृतिक ताकत का दोहन कुछ धूर्त लोग किस प्रकार अपने पक्ष में कर रहे हैं? कुछ और भी नाम हैं जिनको हमने बड़ी राष्ट्रीय योजनाओं के साथ जोड़ दिया है ताकि लोगों में यह भ्रम बना रहे कि हम उन हुतात्माओं के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर रहे है जबकि यह श्रद्धा-वृद्धा कुछ नहीं, अपनी कमजोरियों को छुपाने और लोगों की सस्ती सहानुभूति बटोरने का घटिया उपक्रम है।

आजकल विश्वविद्यालयों के नाम व्यक्तियों के नाम पर रखने का फैशन सा चल पड़ा है। रातोंरात किसी नगर वासी व्यक्तियों के एक वृहद् समुदाय की तुलना में व्यक्ति बड़ा हो जाता है। शिक्षण संस्थाओं के नाम तो विख्यात लोगों के नाम पर पहले से रखे जाते रहे है। बड़े शहरों और कस्बों में सार्वजनिक स्थानों मसलन उद्यानों, खेल स्टेडियमों, रंगमंचों आदि के नाम भी व्यक्तियों के नाम पर पाये जाते हैं। यहां तक कि व्यक्तियों के नाम पर मोहल्लों और कालोनियों के नामकरण होने लगे है। पहले जातिनामों का प्रयोग इनके लिए होता था—ब्रह्मपुरी, पांडेय मोहल्ला, जाटवाड़ी, कुम्हारवाड़ा, सुथारवाड़ा, भड़भूजाघाटी आदि। हमारा उद्देश्य यहां जातिवाद की वकालत करने का नहीं है पर समुदाय से व्यक्ति पर स्थानांतरित होते हुए महत्व को इंगित करने का है। यह तो स्वस्थ लोकतंत्र की भावना के अनुरूप नहीं है।

नई संस्कृति के समूह गौण हो गए, बस्तियां गौण हो गई, शहर गायब हो गए, गांव-कस्बे नदारद हो गए, व्यक्ति उभर आए। समूह चेतना कहां गई हमारी? प्रस्ताव रखा गया अमुक विश्वविद्यालय का नाम कल से अमुक व्यक्ति के नाम पर होगा, अमुक संस्था अब श्रीमान अमुक जी के नाम से जानी जाएगी, लोगों ने प्रायोजित तालियां बजाई, प्रेस नोट जारी हुए और एक समूह की जगह एक व्यक्ति ठग आया।

इससे भी निम्न कोटि की वारदातें होती है व्यक्तिपूजा के नाम पर। श्रीमंत और धनाढ्य वर्ग के लोग दौलत के बल पर किसी संस्था के नाम पट्ट पर खुद चढ़ बैठते हैं। लीजिए साहब, यह बीस लाख रुपये का चैक मगर शर्त यह है कि इस महाविद्यालय का नाम अब मेरे नाम के साथ जुड़कर ही चलेगा।

हम समझते है कि हमने उन महापुरुषों को अपनी श्रद्धा का अर्घ्य चढ़ा लिया जिनके नाम हमने कोई विश्वविद्यालय, कोई सड़क, कोई नहर, कोई बांध, कोई सरोवर, कोई रेलवे स्टेशन, कोई पार्क या कोई सार्वजनिक स्थल कर दिया। अब उन्हें और क्या चाहिए? किसी व्यक्ति को याद करने के नाम पर भुलाने का इससे बढ़िया

उपाय शायद ही मानव जाति ने कभी इससे पहले आविष्कृत किया हो।

और तो और लोकतंत्र का ढोल पीटने वाली सरकार भी अब नामपूजा की ओर बढ़ती दिखाई दे रही है। नाम खरीदने के दो रास्ते हैं—काम और दाम। काम का रास्ता लंबा है। दाम का छोटा। इस हाथ दे उस हाथ ले। हां नाम के आगे राजकीय अथवा शासकीय शब्द जरूर जुड़ा रहेगा।

व्यक्तिपूजा के इस दौर में हमें रुककर शांत चित्त से यह सोचने की जरूरत अब भी रह जाती है कि क्या व्यक्तिपूजा के नाम पर यह सब कुछ जो हम कर रहे हैं, उचित है? क्या व्यक्तिपूजा की यह हवा शिखरासीन व्यक्ति के मन में अपने कृतित्व का प्रतिदान वसूलने की एषणा नहीं जगाएगी? और यदि ऐसा होता है तो क्या इससे उस व्यक्ति का अवदान ऋणात्मक दिशा में प्रभावित नहीं होगा?

एक तरफ हम 'जन' की बात करते हैं जन-सत्ता की बात करते हैं, 'ग्रासरूट लेवल' जैसे खूबसूरत शब्द उचारते हैं, दूसरी तरफ 'व्यक्ति' को प्रसिद्धि की थाली में बिठा-बिठाकर बार-बार परोसते रहते हैं। यह विरोधाभास, यह द्वैत मानसिकता आखिर किस बात की परिचायक है?

कहीं ऐसा तो नहीं कि हम सब एक रुग्ण चिंतन के मोह में पड़कर यह सब कर रहे हैं? सिद्धांतों की बात आएगी तो लोकतंत्र की दुहाई देंगे, जनता-जनार्दन के पास जाएंगे, समुदाय और जाति-प्रजाति की प्रशंसा के गीत गाएंगे और व्यवहार की बात आई तो हम सारा यश, सारी क्षमता, सारा चैतन्य जन से छीनकर 'जने' (व्यक्ति) की झोली में डाल देंगे। अगर आपकी श्रद्धा अपने राजनीतिज्ञों, संतों, दार्शनिकों, संस्कृति पुरुषों, श्रीमंतों और श्रेष्ठिजनों के प्रति उमड़ती है तो उसे किसी और तरह प्रकट कीजिए मगर परमात्मा के वास्ते समुदाय का प्राप्तव्य व्यक्ति को चढ़ाकर समुदाय को उसकी गरिमा से वंचित मत कीजिए।

व्यक्तिपूजा के कई खतरे हैं। संप्रति हमारा ध्यान उनकी ओर नहीं जा रहा है। लेकिन कल जब आने वाली पीढ़ियों का ध्यान उनकी ओर जाएगा तब वे हमें कभी माफ नहीं करेंगी। व्यक्तिपूजा का सबसे बड़ा खतरा तो यही है कि इसमें व्यक्ति को समुदाय की तुलना में बड़ा बना दिया जाता है जबकि वास्तव में ऐसा है नहीं। कोई व्यक्ति कितना ही महान क्यों न हो वह है तो एक ही। वह अनेक से भारी कैसे हो सकता है? यह हमारी भावुकता और श्रद्धा का ही कमाल है कि किन्हीं कमजोर क्षणों में हम एक 'गलती' कर बैठते हैं और फिर उसका अंधानुकरण सदियों तक होता रहता है। यह हमारे देश का खास स्वभाव है।

व्यक्तिपूजा जब एक बार प्रतिष्ठित हो जाती है तो हर व्यक्ति भुजबल, धनबल, छलबल, बुद्धिबल, कलाबल के नाना करतब दिखाता हुआ उस जगह पर पहुंचने की छटपटाहट से भर उठता है जहां उसके नाम की मूर्ति चौराहों पर लग सके, उसके नाम से स्थान, संगठन, संस्थान और प्रतिष्ठान जाने-पहचाने जाएं।

इस तरह समाज का सत्व निर्बल होता जाता है और व्यक्ति सबल। व्यक्ति सबल बने और सबल ही रहे, इसमें किसी को क्या एतराज हो सकता है पर समुदाय की कीमत पर नहीं। समाज के शोषण से कोई व्यक्ति बड़ा बनता है और उसकी प्रतिमा चौराहों पर लगाई जाती है तो निस्संदेह वह कौओं की बीट से अभिषिक्त होने योग्य है क्योंकि जब उस व्यक्ति के काले कारनामे उजागर होंगे तब कोई उधर थूकना तक पसंद नहीं करेगा।

व्यक्तिपूजा की सनक में लिप्त लोगों को इन खतरों और इन जैसे अनेक दूसरे खतरों पर विचार करना चाहिए तथा अपनी श्रद्धा की रोटी सार्वजनिक ईंधन पर सेकने से बाज आना चाहिए।